VOL- VII ISSUE- IX SEPTEMBER 2020 PEER REVIEW e-JOURNAL IMPACT FACTOR 6.293 ISSN 2349-638x

बाजारवाद के परिणाम

डॉ.माधव नामदेराव गायकवाड
कै.व्यंकटराव देशमुख महाविद्यालय बाभळगाव
ता.जि.लातूर

प्रस्तावना –

बाजार से बाजारवाद शब्द बना है, यह सभी जानते है।

बाजार विश्व के लिए नया नही है। हजारो वर्षो से बाजार चला आ रहा है । बाजारवाद ने हर एक काल में रूप बदला है। लेकिन उददेश् मात्र एक ही राह है। बाजार को साहित्य के नजर से अगर हम देखते है तो यह स्पष्ट हो जाता है कि, भक्तिकालीन कवितायों के काव्य में भी बाजार का प्रभुत्व दिखाई देता है । कबीर बाजार में जाकर खडे होते है। तो सूरदास की गोपिकाएँ दूध दही, माखन तथा घी बेचने के लिए बाजार में जाती है। बाजार, मेला अनादिकाल से चले आरहे है, जिसके माध्यम से मानवीय जरूरतो को पूरा तो किया जाता है तथा साथ-साथ एक हर्षोल्लास का केंद्र भी रहा है। बाजार कभी वस्तु विनिमय से चलता रहा तो कभी मुद्राओं से और कब रूपयों से चल रहा है। आधुनिकता और विज्ञान युग के साथ-साथ इसका प्रभाव इतना अधिक बढ गया है कि, बाजार मानवीय आवश्यकता के अनुसार नही बल्कि बाजार जो बेचना चाहे वह हमारी आवश्यकता किस प्रकार बन सकती है यह सोचकर वस्तुए बेचता है। आज बाजार मानव पर हावी हो रहा है। इस बाजारवाद के मानवीय मूल्यो पर क्या परिणाम होंगे इसपर कोई सोचता नही है या सोचकर उसे नजरांदाज कर रहा है। यह युग विज्ञान और तंत्रज्ञान का युग है। अत: इस बाजार को विज्ञान की साथ मिल रही है। वैश्वीकरण और उदारीकरण के कारण बाजारवाद मानवीय संवेदना के गर्दन पर बैठा हुआ किसे को दिखाई नही देता है क्या ?

बीज शब्द – कटघरे, उपभोक्ता, सांस्कृतिक, वैश्वीकरण, पाश्चतिकरण उदारीकरण मानवीय मूल्य, विज्ञापन, दूरदर्शन, भाषाविद ।

इस विज्ञान युग में उपभोक्तावाद मानवतापर हावी हो गया है। विज्ञान के कारण उत्पाद क्षमता अधिक बढ गई उसकी खपत के लिए अलग-अलग विज्ञापनो के सहारे ग्राहको को खरीदने के लिए मजबूर किया जाता है। बाजारवाद के कारण विज्ञापन जहरीला बनाया जाता है। उसके सामने मात्र वस्तू बेचना इतना ही उददेश्य होता है। बेचने का तरीका कोई भी हो बस बेचना है। आज हम देखते है कि, विज्ञापन के बिना कोई भी वस्तू बाजार मे नही आती। बाजार में आई हुई वस्तूए हमारे दरवाजे तक लाकर देने के लिए हजारों एंजन्सियॉ बाजार में काम कर रही है। जो बाजार की वस्तुए हमे हमारे दरवाजे तक लाकर दे रही है। उपभोक्ता और उत्पादन के बिच विज्ञापन काम करता है। एक कंपनी विज्ञापनो पर करोडो रुपये खर्च करती है। विा◌ापन भारतीय संस्कृति के मूल्ये के अनुसार है या नही उस विज्ञापन का भारतीय संस्कृति पर क्या परिणाम होगा इस पर कोई ध्यान नही देता है। आज दृश्यात्मक विज्ञापनो का विकृत रूप हो गया है। विज्ञापनो के कारण परिवारो के साथ दूरदर्शन देखना मुश्किल हो गया है। अगर कोई सारा परिवार एक साथ दूरदर्शन देखता है तो विज्ञापन आने के बाद या तो छोटे सदस्यों को उठकर बाहर जाना पडता या बडे सदस्यों को। यह भारतीय संस्कृति के लिए हानिकारक है। ऐसे कई विज्ञापन है। सरकार भी इसपर ध्यान नही देती। सरकारने बाजारवाद को उदारीकरण, वैश्वीकरण को एक साथ मिला दिया। उन्ही के बलबुते पर बाजारवाद घर-घर में घूस गया। बाजारवादने विज्ञापन के सहारे भारतीय मूल्यों को खतरे में डाला है। अगर इसी प्रकार भारतीय संस्कृति और भारतीय मूल्यों का हनन होत रहा तो भारत के घर-घर में पाश्चात्य संस्कृति घुस जाएगी । बाजारवाद का उददेश्य उपभोक्ताओ की पूर्ति करना है। इसी पूर्ति की नस पकडकर बाजारवाद ने अपना प्रभुत्व निर्माण किया है। बाजारवाद अब लोगों में आशा, इच्छा, आपूर्ति निर्माण कर रहा है। उपभोक्ताओं

को मजबूर कर रहा है। बाजार विज्ञापनों के सहारे झूठ-मूठ की बातों को सही दिखाकर ग्राहक को फँसाता है। गंदे-गंदे दृश्य दिखाता है। जहाँ लेडिज की आवश्यकता नही होती है वहां लेडिज दिखाया जाता है। अनावश्यक दृश्य दिखाये जाते है। ऐसे विज्ञापनो का बाल मानसिकता पर भंयकर परिणाम हो रहे है। जिसके कारण बाल मन भारतीय मूल्यों से दूर जा रहा है। यह सही है कि, औदयोगिक क्रांति के पश्चात उत्पाद क्षमता बढ गई है। जहाँ उत्पाद बढ जाता है, तो उसकी खपत भी होनी चाहिए उसक खपत के लिए ग्राहको को प्रसन्न करना भी अनिवार्य है। इसीलिए विज्ञापनो के सहारा लेना चाहिए। लेकिन विज्ञापनो का विपर्यास नही होना चाहिए। जो भारतीय संस्कृति और मूल्य को हानीकारक साबित ना हो। बाजारवाद, वैश्वीकरण और उपभोक्ता की अपसंस्कृति के कटघरे में देश की भाषाएँ अटकी हुई है। बढती हुई इच्छांओ को तृप्त करने के लिए बाजारवाद ने भाष के तीन तेरा कर दिए। देश की किसी भी राज्य की भाषा अपने मूल रूप में सामने नही आती। बाजारवाद ने भाषा को अपने सुविधा के अनुरूप प्रयुक्त कर उसका शुध्द रूप तथा व्याकरणिक रूप समाप्त कर दिया। भारतीय प्रत्येक भाषाओं में अंग्रेजी का प्रभुत्व बढता जा रहा है। सामान्य लोगों के बोलचाल के एक वाक्य में दो शब्द अंग्रेजी के होते है। आज कोई भी भारतीय भाषा अपने शुध्द रूप में बोली नही जाती है न लिखि जाती है। यह सही है कि, इसके लिए केवल बाजारवाद ही कारण नही है, लेकिन अनेक कारणों में यह एक कारण है। सामान्य व्यक्ति भी अंग्रेजी की ओर आकर्षित हो गया है। इसीलिए थैलाभर शुल्क देकर अपनी संतान को अंग्रेजी पाठशाला में डाला जाता है। प्रांतिय भाषाओं की पाठशालाएँ बंद होने के कगार पर है। राजभाषा के संदर्भ में देखा जाए तो हिंदी केवल नाम के लिए राजभाषा रही है। बाजारवाद और वैश्वीकरण ने उसे कटघरे में खडा कर दिया है। बाजार ने हिंदी भाषा में अनेक अंग्रेजी शब्द आए है। यह शब्द बाजार की जरूरतो के अनुसार पाये जाते है। यही शब्द समाज में रूढ हो रहे है। हिंदी अंग्रेजी की खिचडी से भाषा का विकास संभव नही होता है। भाषा की अस्मिता समाप्त होने जा रही है। भाषा केवल व्यवसाय का साधन बन गई है। अंग्रेजी के 1 प्रतिशत शब्द हिंदी के 99 प्रतिशत शब्दो पर अपना प्रभुत्व सिध्द कर रहे है। हमारा प्रींट मीडिया भी उसके लिए जिम्मेदार है। मिडिया भी शुध्द हिंदी का प्रयोग नही करता है। आज मीडिया का बाजार हो गया है। मीडिया के क्षेत्र में काम करनेवाले लोग नोकरी समझकर काम करते है। इसीलिए भाषाविदों की कमी स्पष्ट रूप से सामने आता है। दूरदर्शन के हजारो दूए सामने आते है। किसी भी सामुद्रधुनी पर शुध्द हिंदी का रूप कानोपर आता नही है। संगणक के इस युग में समाचार पत्रों की संख्या नाम के लिए बढ गई है। लेकिन गुणवत्ता,और विज्ञापन मूल्य हीन हो रहे है। मीडिया भी भाषा को अपने विकास के लिए प्रयुक्त करता है। भाषा के विकास के लिए नही। भाषा के बुनियादी संस्कार को काटछाटकर भाषा के विकास में बाधक बनता है। इसका परिणाम साहित्य पर धारे-धीरे होने लगा। साहित्य की चिंता मौलिकता और रचनात्मकता को मर्यादा को समाप्त कर दिया है। हिंदी और अंग्रेजी की तुलना करना शुरू हो गयी। यह एक बात समाज में फैलने लगी हे कि, हिंदी भाषा में ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा का अभाव है। तव्दत: लोगों का झुकाव अंग्रेजी की ओर अधिक बढने लगा। इस संदर्भ में भविष्य में होनेवाले परिणाम भी मीडिया को दिखाई नही दिया। उदारीकरण के धोरण से औदयोगिक क्रांति का तो बिगुल बज गया है। बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ अपने प्रबंधन के लिए अंग्रेजी का ज्ञान आवश्यक माने जाने का ट्रेंड पड गया है। धोरण से हिंदी मार खा गई। बाजार अपना मूल्य और संस्कृति फैला रहा है।समाज अज्ञानी होने के कारण समाज के समाने जो भी परोसा जाता है, समाज उसे स्वीकार लेता है। सरकार से भी कुछ विशेष प्रयत्न नही होते है। जो भी कुछ कुछ होता है वह नाम मात्र है। हिंदी के लिए केवल योजनाएँ बनती है। उसका अमल नाम मात्र केवल कागज और कार्यालयों में ही होता है। उसकी परछाई समाज में दिखाई नही देती। संगणक की भाषा हिंदी को बनाने के लिए सरकार निहत्थी हो गयी है। आज बाजार में सारे साफटवेअर अंग्रेजी में ही लिखते है। बिल गेटस ने कहा था कि, हिंदी कम्प्युटर की भाषा बन सकती है। फिर सरकार की ओर से कोई प्रयास नही किए जाते। हिंदी की अस्मिता बनाए रखने के लिए संगणक में अधिक-अधिक से हिंदी का प्रयोग होना चाहिए। संगणक के लिए कोई भी भाषा, भाषा के रूप में नही होती है। केवल कंमाड के रूप में होती है। तो हिंदी कंमाड क्यों नही बनाया जाता।

संगणक हिंदी के लिए नये-नये अविष्कार होने चाहिए। सामान्य व्यक्ति भी संगणक तथा अपने भ्रमणध्वनी में हिंदी में काम कर सके। तथा हिंदी कही अपने मूल रूप में सामने आ सकेगी अन्यथा हिंदी की हिंग्लीश ही बन जाएगी। प्राचीन काल में बाजार संकल्पना अलग थी। वहां एक सामाजिकता थी। वहां सामुहिकता थी। वस्तूओ का आदान प्रदान होता था। लोगो के बीच में संवाद करने की अपनी-अपनी भाषा थी। उस काल में बाजार की कोई अपनी भाषा नही थी। लेकिन आज बाजार ने सहकारिता और आत्मिक भाव को नष्ट कर दिया है। बाजार में भाव हीनता से आदमी घूसता है। पुराने बाजार में लोग केवल ग्राहक बनकर नही जाते थे। सामुहिकता उनका उददेश्य था। व्यापार हो ना हो लोगों को मिलने के लिए बाजार में जाते थे। लेकिन आज अकेलापण बाजार का मूल चरित्र बन गया है। बाजारवाद ने सबसे कडा प्रहार भाषा पर किया है। हमारी भाषा बिघाडने का काम किया है। सबसे अधिक क्षति हिंदी भाषा को हुई है। पहले बाजार गाँव के बाहर लगता था। आज दूरदर्शन में जाकर बैठा है।

बाजार ने हमारे अस्तित्व कसे हिलाकर रखा है। गाँव के गाँव और शहरो के शहर उसके चपेट में आ गए है। आज घर में जितने सदस्य उतनी ही माबाईल की संख्या है। घर-घर में टी.वी हो गया है। यह सारा नई अर्थव्यवस्था परिणाम है। चिजे सस्ती हो गयी लेकिन आदमी-आदमी से दूर हो गया। एक दूसरे के प्रति हमदर्दी नष्ट । हर चीज बिकाउ हो गयी। बाजार में हम किसी वस्तू की आवश्यकता होने पर ही जाते है। लेकिन आज बाजारवाद के युग में बाजार की चीजे आपका पीछा करते हुए हमारे दरवाजे तक आ रही है और खरीदने के लिए हमे मजबूर कर रही है। जिस चीज का हमे नही या करना नही है उसे उपयोग में लाने के लिए बाध्य् कर रही है। अत: बाजार के संस्कृति के घुडदौड में दुनिया के अधिकांश देशो में आर्थिक, संस्कृतिक जीवन का लोप होने का भय है। प्रश्न यह है कि, बाजारवाद के दुविधा से मुक्ति कैसे पाए ? समस्या का समाधान इसीमें हो सकता है कि, विविधता के बीच कुछ ऐसे मूल्यो की तलाश हो जो विविधता के बावजूद भी विभिन्न मानवो का कल्याण हो।

संदर्भ सूची :

1) प्रभाकर श्रोत्रिय : बाजारवाद में हिंदी – नेशनल पब्लिशिंग हाउस 2009 ।
2) रामविलास शर्मा : भारतीय संस्कृति और हिंदी प्रदेश – किताबघ्र 1999 ।
3) डॉ गिरिवरधारी सिंह : राजभाषा हिंदी एक अवलोकन – मनीषा प्रकाशन 2000 ।
4) ओंकार नाथ वर्मा : प्रशासनिक हिंदी – उपकार प्रकाशन 2002 ।
5) डॉ माधव सोनटक्के : प्रयोजनमूलक हिंदी – छाया पब्लिकेशन 1999 ।
6) डॉ रामचंद्रसिंह सागर : कार्यालय कार्याविधी – आत्माराम एण्ड सन्स 1993 ।
7) डॉ चंद्रपाल : प्रशासनिक हिंदी – संजय बुक सेंटर वाराणसी 2000 ।
8) डॉ रामप्रकाश, डॉ दिनेश गुप्ता – राधाकृष्ण् प्रकाशन 1997 ।